यह तो जिसको... बापू! आत्मा का खेल खेलना हो और संसार के जन्म-मरण की जाल टालनी हो, उसके लिये यह बात है। बाकी सब मौज करे, सब एक-दूसरे को मख्खन लगाये कि, ओहोहो..! आपने बहुत धर्म किया, वह कहे, आपने बहुत अच्छा धर्म बताया। परस्पर एक-दूसरे को मख्खन लगाये। माखण समझते हो न? मख्खन माने क्या? मसका-मसका। यहाँ तो कहते हैं कि नहीं। भगवान के पास इन्द्र आकर भक्ति करे तो इन्द्र आकर करते हैं ऐसा जो कहा है, वह असत्य बात है। शरीर की क्रिया आत्मा कर सकता ही नहीं। उस वक्त भक्ति का राग था न? राग था। लेकिन राग था इसलिये क्रिया हुई है ऐसा कहा हो तो वह बात सत्य नहीं है। और राग था तो हमारे जन्म-मरण का अन्त होगा। हे नाथ! आप की भक्ति से मुक्ति होगी, ऐसा लिखा हो तो समझना कि ऐसा है नहीं। वह राग तो पुण्यबन्ध का कारण है। जैसे व्रत का परिणाम पुण्यबन्ध का कारण है, ऐसे भक्ति के परिणाम भी पुण्यबन्ध का ही कारण है। इसीप्रकार अन्यत्र भी व्यवहारनय को समझना। लो!

अब दूसरा प्रश्न उठेगा कि यह बात तो ठीक, लेकिन अपने को क्या? पर को उपदेश करने में अपना कोई प्रयोजन है व्यवहार में? उपदेश के लिये आप की व्याख्या हुई। अब अपने लिये व्यवहारनय अंगीकार करना कुछ लाभदायक है कि नहीं? उसका स्पष्टीकरण करेंगे। (श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर सं.-२४८८, चैत्र सुद १४, बुधवार, दि.१८-४-१९६२
अधिकार - ७, प्रवचन नं.-२०

यह सातवाँ अधिकार है। जैन में जन्म होने के बावजूद, निश्चय अर्थात् सत्य का क्या स्वरूप और व्यवहार अर्थात् आरोपित कथन और आरोपित भाव क्या है, इसकी जानकारी बिना, एकान्त से अपने मत को मानता है, वह जैन में रहनेवाला साधु हो, गृहस्थ हो फिर भी वह सब मिथ्यादृष्टि है। मिथ्या अर्थात् पापदृष्टि है। उसको धर्मदृष्टि की खबर नहीं है। वह बात चलती है। तीन बात आ गयी।

निश्चय है वह आत्मा के मूल स्वरूप को बताता है अथवा निश्चय है वह वीतरागभाव को मोक्षमार्ग का स्वरूप कहकर बताता है। व्यवहार है वह जीव को नारकी जीव, मनुष्य जीव आदि से, निमित्त से उसकी पहचान कराता है। और व्यवहार, निश्चय मोक्षमार्ग जो आत्मा का वीतरागी अंतर ज्ञाता-दृष्टा की दृष्टि, उसका ज्ञान और रमणता,

उसके साथ व्रत, नियम और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि का राग, उसको उपचार से मोक्षमार्ग कहते हैं, लेकिन निश्चय से वह मोक्षमार्ग नहीं है। मोक्षमार्ग तो अन्तर स्वभाव में निर्विकल्प अनाकुलता की प्रतीत, ज्ञान और रमणता ऐसी अन्तरदृष्टि अनुभवसहित स्थिरता, उसको ही भगवान एक सच्चा मोक्षमार्ग कहते हैं। ऐसी बात का वर्णन किया।

तब शिष्य का प्रश्न है '**कि व्यवहारनय परको उपदेश में ही कार्यकारी है या अपना भी प्रयोजन साधता है?**' वह तो आपने उपदेश की व्याख्या कही। नारकीजीव, मनुष्यजीव, व्रत, नियम के भेद, यह हो वहाँ वीतरागभाव अन्दर होता है, ऐसा समझाने की व्याख्या आपने तो उपदेश की करी। लेकिन आत्मा को खुद को कुछ व्यवहारमें से प्रयोजन सिद्ध हो ऐसा कुछ है? समझ में आया? व्यवहारनय अर्थात् जो निमित्त से समझाये, भेद से जीव को समझाये वह बात आत्मा को अपने लिये कुछ व्यवहारनय प्रयोजनवान, योजनीय, कुछ कार्यगत हो ऐसा कुछ है?

'**समाधान :- आप भी जब तक निश्चय से प्ररूपित वस्तु को न पहिचाने...**' ऐसी बात है। निश्चय से कहा हुआ आत्मा का स्वभाव पर से बिलकुल भिन्न है, अपनी जाति त्रिकाल शुद्ध और आनन्द है, ऐसी निश्चयस्वरूप कही हुई बात जब तक बराबर न पहिचाने, तब तक व्यवहारमार्ग द्वारा वस्तु का निश्चय करे। व्यवहारमार्ग द्वारा वस्तु का निश्चय करे ऐसा है। व्यवहारमार्ग द्वारा निश्चय की प्राप्ति होती है ऐसा नहीं है।

जब तक स्वयं निश्चयनय से आत्मा की अन्तर रुचि और दृष्टि की परिपूर्णता, शुद्धता निश्चय की प्राप्त न करे, तब तक वस्तु को पहिचानने के लिये '**व्यवहार मार्गसे...**' विकल्प द्वारा विचार करे, राग द्वारा विचार करे। लेकिन विचार किसका करे? कि निश्चय अभेद हूँ उसका। आहाहा..! समझ में आया? निमित्त द्वारा निश्चय करे, लेकिन निमित्त में जो सुना वह निश्चय किसका? कि ज्ञानमूर्ति शुद्ध चैतन्य अभेद आनन्द है, उसका व्यवहारमार्ग द्वारा निश्चय करे तब तो वह बात नीचे की दशा के लिए कार्यकारी है। नीचे की दशा में भी व्यवहारनय स्वयं को कार्यकारी है इसलिये, इस कारण से।

व्यवहार द्वारा, विकल्प द्वारा, निमित्त द्वारा, भेद द्वारा अखण्ड ज्ञानमूर्ति शुद्ध अकेला शुद्ध चैतन्य पिण्ड है, ऐसा निर्णय व्यवहारमार्ग द्वारा, द्वारा करे निश्चय उसका। इसलिये नीचे की दशा में व्यवहारनय स्वयं को भी इस तरह व्यवहार द्वारा, राग द्वारा, विकल्प द्वारा, भेद द्वारा निश्चय ज्ञायकमूर्ति आनन्दकन्द परमात्मा स्वयं है, उसका अनुभव जब तक नहीं होता, वह अनुभव और निश्चय करने के लिये विकल्प द्वारा उस मार्ग को ग्रहण करे।

'**परन्तु व्यवहार को उपचारमात्र जानकर उसके द्वारा वस्तु को ठीक प्रकार समझे तब तो कार्यकारी हो;...**' वह विकल्प आये कि मैं ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य हूँ, परमानन्द हूँ, पूर्ण हूँ, शुद्ध हूँ, आनन्द की नित्यानंद मूर्ति हूँ, ऐसे विकल्प द्वारा, राग द्वारा निर्णय करे तब तो ठीक है। लेकिन व्यवहार को उपचारमात्र माने, राग को तो उपचार आरोपित मात्र माने। उससे निर्णय होता है, अनुभव होता है ऐसा नहीं है। समझ में आया? कषाय की मन्दता, लोभ मन्द, मान मन्द आदि राग की मन्दता द्वारा अन्तर्मुख में वस्तु मात्र ज्ञान चैतन्य एक अभेद पदार्थ है, उसका निर्णय करने के लिये हो, तब तो उस अपेक्षा से व्यवहारनय प्रयोजनवान अर्थात् कार्यगत है। लेकिन उसको उपचार माने। ऐसा नहीं कि राग से और भेद से भी वह एक वस्तु है। राग से भी निर्णय किया तो वह राग भी आत्मा के स्वभाव एक चीज है। भेद करके विचार करे कि मैं ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, आनन्द हूँ, ऐसा भेद करके निर्णय करे, लेकिन भेद को पूरी चीज मान ले, समझ में आया? उसको ही जीव, निमित्त साधन है, उसको ही सत्य मान ले, उपचार न मानकर, आरोप न मानकर, वह सत्य है ऐसा माने तो '**व्यवहार को उपचारमात्र मानकर उसके द्वारा वस्तु को ठीक प्रकार समझे...**' बराबर निर्णय हाँ! जैसी वस्तु चीज है सिद्ध समान, ऐसा निर्णय करे तो कार्यकारी हो।

'**परन्तु यदि निश्चयवत् व्यवहार को भी सत्यभूत मानकर...**' वस्तु तो सत्य त्रिकाल आनन्दकन्द सच्चिदानन्द निर्मलानन्द प्रभु आत्मा है वह सत् है। और उसको निर्णय करने का विकल्प उठता है वह उपचार है, वास्तविक वस्तु नहीं है। लेकिन उसको ही सत्यभूत माने कि राग आता है न? आता है न? होता है न? उसके बिना होता है? ऐसा मानकर राग के भाग पर बहुत जोर दे, वही सत्य है और उससे ही आत्मा का अनुभव हो सकता है, ऐसा यदि माने तो उलटा अकार्यकारी होता है। बहुत सूक्ष्म बात है। समझ में आया?

'**परन्तु यदि निश्चयवत् व्यवहारको भी...**' निश्चय सत्य त्रिकाल अभेद वस्तु वह सत्य है। उसका आश्रय कराने को भेद के कथन द्वारा उसको समझाया जाता है और स्वयं भी भेद द्वारा समझने का प्रयत्न करे। लेकिन भेद को, ज्ञान और दर्शन और आनन्द हूँ ऐसे भेदविकल्प आये वह भी कुछ सत्य है, सत्य पाने के लिये, वह भी एक सत्य साधन है, वह भी एक सत्य कारण है, सत्य भाव है ऐसा माने तो उसको व्यवहारनय अकार्यगत होता है। निश्चय का लाभ होता नहीं और पुण्यबन्ध में अटक

कर चार गति में भटकता है। ओहो..! यह बात तो अभी कहाँ है? यहाँ तो अभी कोई ठिकाना नहीं ऐसे बाह्य नियम और व्रत, अहिंसा, सत्य, दत्त का भी ठिकाना न हो, उसको मान बैठे कि हम साधन करते हैं और उससे हम निश्चय को प्राप्त करेंगे, हम धर्म को प्राप्त करेंगे। ऐसा है नहीं। समझ में आया? समझ में आता है कि नही इसमें? रमणीकभाई! इसमें समझ में आता है कि पैसे में...?

श्रोता :- उसमें तो समझ सकते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- समझ में आता है कि नहीं, पैसा अच्छा है, ऐसी ममता का। समझ में आया इसमें? नेमिचन्दभाई!

भगवान आत्मा एक सेकन्ड के असंख्य भाग में सिद्ध समान पूर्ण शुद्ध चैतन्यदल है। देह भिन्न केवल चैतन्य का ज्ञान। देह भिन्न केवल चैतन्यमात्र गोला भिन्न पड़ जाये, उसका भान होने हेतु, पहले विकल्प और भेद द्वारा विचार होते हैं। समझ में आया? लेकिन उस भेद को, विकल्प को भी सत्य मानकर वहाँ अटके तो उसको व्यवहारनय मात्र बन्ध का कारण होकर परिभ्रमण कराता है। उसमें कोई आत्मा का लाभ होता नहीं। कहो, नेमिचन्दभाई!

'**परन्तु यदि निश्चयवत् व्यवहारको भी सत्यभूत मानकर वस्तु इसप्रकार ही है...**' व्यवहार से भी अन्दर प्राप्त कर सकते हैं, व्यवहार भी सच्चा है, भेद भी सच्चा है, राग आता है विकल्प, दया, दान का राग अथवा विचार का यहाँ तो, वह व्यवहार भी सच्चा है, ऐसा मानने से मूढता बढ़ती जाये। समझ में आता है? दुर्गादासजी! देखो यह धर्म। व्रत, नियम तो कहाँ थे? अभी तो दर्शन की खबर नहीं, सम्यग्दर्शन किसको कहे। ये तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, जाओ सम्यग्दृष्टि है। ये सभी सेठ लोगों को भान नहीं, सुननेवाले को। जय नारायण। नरभेरामभाई!

श्रोता :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- खर्चा तो होता है वह होता है, क्या कौन कर सकता है? सेठ के पास खर्च करवाना है उसको। कौन करता है खर्चा-बर्चा? वह तो होता है वह होता है। अन्दर राग की मन्दतावाला जीव हो तो ऐसा परिणाम उसको आता है। बाहर की प्रभावना में वह निमित्त है। वह भी वस्तु नहीं है। आहाहा..! समझ में आया?

अरे..! जिसको जन्म-मरण का अन्त लाना है, जिसको भगवान आत्मा के अनुभव के पाताल में जाकर उसकी प्राप्ति करनी है, समझ में आया? जिसको ज्ञान अनुभूति

चैतन्य आत्मा पूर्णानन्द जिसके भान में परमेश्वररूप आ जाय, ऐसा जिसको आत्मा का साक्षात्कार सम्यग्दर्शन से करना है उसको, पहले ऐसे व्यवहारविकल्प आते तो हैं, लेकिन उसको ही सत्य मान ले और उससे प्राप्त होगा, तो वहीं अटककर अनन्त काल से चार गति में भटक रहा है, (ऐसे ही भटकता रहेगा)। समझ में आता है? जामनगर। समझ में आया?

यह वस्तु है, परमाणु के एक-एक रजकण से पार अस्ति तत्त्व है चैतन्य और इस तत्त्व में अनन्त-अनन्त बेहद आनंद, ज्ञान, शुद्धता, स्थिरता अर्थात् चारित्र, ऐसी शक्तियाँ अनन्त हैं। उसका एकरूप सामान्य पूर्ण है, उसके अनुभव के लिये, निश्चय की प्राप्ति के लिये बीच में अपने कार्य के लिये ऐसे विकल्प आते हैं। भेद का विचार भी आये कि यह वस्तु ज्ञान है, दर्शन है, आनन्द है। लेकिन उसके द्वारा उसको छोड़कर अंतर अनुभव का निर्णय करे तो वह व्यवहार कार्यगत व्यवहार से है ऐसा कहने में आये। व्यवहार से कार्यगत व्यवहार से है ऐसा कहने में आता है। आहाहा..! समझ में आया?

लेकिन वह सब कषाय की मन्दता की क्रिया, विकल्प और भेद वह भी एक चीज है, वह भी एक चीज है, आरोपित और उपचारित भी एक चीज है ऐसा मानकर बारदान को चावल मान ले, चार मण और अढाई शेर बारदान के साथ वजन किया जाता है। चार मण चावल और अढाई शेर बारदान साथ में वज़न करने में आता है। वह बारदान कहीं खान के काम नहीं आता। समझ में आया? बारदान द्वारा इतने चावल है ऐसा निर्णय कर ले तब तो ठीक, लेकिन बारदान ही चावल है... ऐसे भगवान आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, उसके पूर्णानन्द के अनुभव के लिये, उसके साक्षात्कार के लिए देह और राग से भिन्न होने में ऐसे भेद के विकल्प द्वारा छूटकर निश्चय करे तब तो उस व्यवहार को, व्यवहार से प्रयोजनवान है ऐसा कहने में आता है।

'**परन्तु यदि निश्चयवत्...**' यह सच्चा है न? व्यवहार सच्चा है न? नहीं है? नहीं है? है, किसने ना कहा? लेकिन है वह आत्मा के अनुभव के लिये सच्चा नहीं है, कहो। समझ में आया? भगवान ज्ञान की मूर्ति अकेला चैतन्य केवलज्ञान का पिण्ड आत्मा है। ऐसे केवलज्ञान में उससे विरुद्ध जो विकल्प है उसके द्वारा निर्णय करने जाता है। लेकिन उसके द्वारा कब कहा जाये? कि उसको छोड़कर अनुभव करे तो। लेकिन उसको ही सच्चा मान ले, यह करो, यह करो, करते करते होगा, यह रागकी मन्दता, क्रिया, भेद उसका विचार, भेद करते-करते अभेद में जाना होगा। इस

प्रकार भेद को भी सच्चा मान ले, सत्य मान ले, परमार्थ मान ले, ऐसी श्रद्धा करे तो तो ऊलटा अकार्यकारी हो जाये। देखो! उसमें कार्यकारी लिखा था। व्यवहार और भेद को। और इसमें उसको सत्य माने, यह भी सत्य है, यह भी सत्य है न। भेद, कषाय की मन्दता, विकल्प इत्यादि सत्य है न? स्वरुप नहीं है? सुनन अब। भेद-भेद वस्तु में है ही नहीं, राग-बाग वस्तु में है नहीं। वह तो निराली वीतरागी विज्ञानघन चिदानन्द आनन्दकन्द है।

उसमें विकल्प को, शुभराग को, पुण्यभाव को साधन मान ले कि वह भी सच्चा साधन है, सच्चा मार्ग है, ऐसा माने तो ऊलटा अकार्यकारी होता है। मार्ग में अन्दर जाना था वह पड़ा रहे और वहीं का वहीं फँसकर बहिर्मुख दृष्टि पक्की दृष्टि हो जाये। उसका भटकना मिटे नहीं। पोपटभाई! भाई! बात तो ऐसी है। सेठ के पास पैसे-बैसे निकलवाये और उससे धर्म होता है, धूल में भी नहीं है ऐसा कहते हैं। लाख मन्दिर करो तुम्हारे, मन्दिर तो मन्दिर के कारण होता है। और मन्दिर के भाव में जिसको राग की मन्दता सहज प्रभावना के लिये आई हो, सहज शुभभाव है। समझ में आया? लेकिन उसके द्वारा आत्मा में बहुमान आये कि, ओहो..! यह सर्वज्ञ परमात्मा पूर्ण हैं, ऐसा ही मैं सर्वज्ञ परमात्मा पूर्ण हूँ, ऐसा विकल्प द्वारा बहुमहात्म्य आकर यह वस्तु ही कोई चमत्कारी वस्तु है, जो चमत्कार मुझे केवलज्ञानकी पर्याय में लगता है अथवा सर्वज्ञ के अनन्त आनन्द में लगता है, वही चमत्कारी वस्तु मैं हूँ। वस्तु ही मैं चमत्कारी हूँ। मेरा चैतन्यचमत्कार भगवान भरा हुआ है। विकल्प द्वारा यहाँ निश्चय करने जाये तब तो व्यवहार से कार्यगत कहें। व्यवहार से कार्यगत है न? समझ में आया? परन्तु यदि उस विकल्प को ही सत्य मान ले कि वह भी है न... वह भी है न... वह भी है न। परन्तु है तो क्या हुआ? वह साधन है, कारण है। ऐसा वहाँ कहा था न? कार्य-कारण कहा था न? कदाचित् कार्य-कारण भी है। फिर भी वह कथन मात्र है। व्यवहार से निश्चय होता है वह व्यवहारमात्र कथन है। आहाहा..!

व्यवहार अर्थात् व्रत पाले, उपवास करे उस व्यवहार की यहाँ बात नहीं है, वह तो लिया मिथ्यादृष्टि को। उसको तो व्रत भी कैसा और दूसरा भी क्या? उसकी बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो भगवान अखण्ड अभेद चैतन्यप्रभु, जिसमें अनन्त-अनन्त आनन्द के कोले पके ऐसी बेल है। अनन्त-अनन्त केवलज्ञान के कोले, सक्करकोला पके ऐसी बेल भगवान आत्मा है। ऐसे चैतन्य को ग्रहण करने विकल्प द्वारा यदि अन्दर जाये तब तो उसको व्यवहार से कार्यगत कहने में आये। लेकिन उस राग को और भेद

को सर्वस्व मानकर, सत्य मानकर अटक जाये, तो ऊलटा कार्य करना रह जाता है और गलत रास्ते पर चढ़ जाता है। समझ में आया? यह बात समझने की है, बाकी दूसरी तो ठीक जानने की बात है। यह प्रयोजनभूत बात है। आहाहा..!

देखो! यह वस्तु ऐसे ही है। व्यवहार से ही समझ में आती है। व्यवहार से बैठती है इसलिये व्यवहार का जोर दे। दो जोर, राग की मन्दता का विकल्प और शुभभाव (पर)। अटककर मर जायेगा, हाथ आयेगा नहीं। वह सीढ़ी छोड़कर अन्दर जाने के लिये बीच में यह एक बात आती है। लेकिन आये उसको ही तु सत्य मान ले, तो ऊलटी बाह्य बहिर्मुख दृष्टि की पुष्टि होने से अन्तर्मुख दृष्टि होगी नहीं।

'**यही पुरुषार्थसिद्धियुपायमें कहा है :-**' पुरुषार्थसिद्धियुपाय, अमृतचंद्राचार्य महाराज, जो समयसार के कर्ता कुन्दकुन्दाचार्यदेव नग्न दिगम्बर सन्त भावलिंगी। उनके बाद एक हज़ार साल बाद हुए अमृन्तचन्द्रचार्य मुनि सन्त भावलिंगी परमेश्वर। परमेष्ठी आचार्य परमेश्वर। वे वन में कलश लिखते हैं, उसमें एक पुरुषार्थसिद्धियुपाय ग्रन्थ बनाया स्वयं ने। उसके ६-७ श्लोक में स्वयं अमृतचन्द्राचार्य व्यवहार और निश्चय का थोड़ा न्याय समझाते हैं।

अबुधस्य बोधनार्थं मुनिश्वरा देशयन्त्यभूतार्थम्।
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति।।६।।
माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीत सिंहस्य।
व्यवहार एव हि तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयस्य।।७।।

श्लोक बहुत ऊँचा है देखो! मुनिराज धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि अनुभवी चारित्रवंत निर्ग्रंथ मुनि, अंतरमें से राग की गाँठ गल गई है और बाहर में भी जिनको बिलकुल नग्न निर्ग्रंथदशा वर्तती है, ऐसे सन्त '**मुनिराज, अज्ञानीको समझाने के लिये...**' यहाँ भाई यह बात है अभी। वह व्यवहारनय अलग, यह श्रद्धा की अपेक्षा से बात है अभी। धर्मी की भूमिका का बारहवीं गाथा का है। यहाँ तो मात्र समझाना है सामने। आँठवी गाथा में जो अनार्य लिया था, वह शैली यहाँ ली है। इस बात को वर्तमान में १२वीं गाथा में डाल देते हैं। समझ में आया? ऐसा कहते हैं कि बारहवीं गाथा में जो (कहा कि)...

सुद्धो सुद्धादेशो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववरादेसिदा पुण जे दु अपरमें ट्ठिया भावे।।१२।।

जब तक मिथ्यादृष्टि है, तब तक व्यवहार का उपदेश उसको कार्यकारी है, ऐसा

कुछ लोग अर्थ करते हैं। ऐसा नहीं है वहाँ। धर्म '**भूदत्थमस्सिदो खलु,...**' भगवान पूर्णानन्द सत् सत् का सत्त्व पूर्ण, आनन्द का सत्त्व पूरा चिह्न है। समझ में आता है? ऐसा देह, वाणी विकल्प से (भिन्न) भान होकर बाद में उसकी दशा में पूर्णता है या कुछ कमी है? वह बताने के लिये बारहवीं गाथा में व्यवहारनय का उपदेश समझाया है। कितने ही लोग उसका ऊल्टा अर्थ करते हैं।

दृष्टि होने के बाद भी उसको शुद्धता के अंश बढ़ते हैं, अशुद्धता के कम हो रहे हैं, अशुद्धता के वर्तते हैं, उसको जानने के लिए कहते हैं कि देखो यह है उसको बराबर जानना। व्यवहारनय का विषय वहाँ चोथे, पाँचवे, छठवें में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, शुद्धता का अंश बढ़े उसको, बहुत अंश को लक्ष्य में लेना वह व्यवहार, अशुद्धता घटे उसको जानना और अशुद्धता दया, दान, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग वर्तता है उसको जाना हुआ प्रयोजनवान है ऐसा वहाँ कहने में आया है।

यहाँ तो अभी प्रथम समझाना है, अज्ञानी को समझानेकी बात है। वहाँ बारहवी गाथा अज्ञानी को समझाने के लिये ली है ऐसा लिखा है, एक नग्न द्रव्यलिंगी भी नहीं है उसने ऐसा अर्थ किया है। समझ में आया? अरे..! चैतन्य की बात कहाँ गयी? और क्या हुआ? त्यागी होकर सूखकर मर गये। नग्न होकर मर जाये, सूख जाये फिर भी वहाँ कहाँ धर्म था उसमें? अट्ठाईस मूलगुण पालता हो नग्न होकर फिर भी वह धर्म नहीं है। एक बार खड़े-खड़े आहार ले वह भी धर्म नहीं है। वह तो राग की क्रिया, पुण्य की क्रिया है। समझ में आया? उससे रहित दृष्टि का अनुभव हुआ, अनन्त काल में नहीं हुई थी ऐसी अपूर्व आत्मा की प्राप्ति की उपलब्धि हुई, बाद में उसको राग की मन्दता आये बिना रहती नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, प्रभावना, पूजा, दया, दान, ऐसे भाव आते हैं, उसे ज्ञानी, स्वयं का ज्ञान करते हुए, वह है ऐसा जानना चाहिये। जानना चाहिये वह प्रयोजनवान है। आदरना चाहिये वह प्रयोजनवान है ऐसा नहीं हैं।

यहाँ दूसरी बात है। यहाँ तो कहते है कि '**मुनिराज अज्ञानीको समझाने के लिये असत्यार्थ जो व्यवहारनय उसका उपदेश देते है।**' व्यवहार से उसको उपदेश देते हैं। हे आत्मा! तुम एकरूप हो, लेकिन ये देख तेरी पुंजी। बड़े गृहस्थ हो तो उसको होता है न कि क्रोड़ रूपये के हीरे हैं, पचास लाख का सोना है। पचास लाख की चाँदी है, दो क्रोड़ का माणेक है, ऐसा सब एकट्ठा करके समझाते हैं कि नहीं? ऐसा कहकर तुम एक अरबपति हो। नरभेरामभाई! बड़ा गृहस्थ हो उसके वहाँ कितना पड़ा हो,

अरबपति को कहाँ... पाँच-पाँच क्रोड़े के कितने हीरा, माणेक और कितने ही ढेर पड़े हो वहाँ। जैसे यह धूल है, वैसे वह भी धूल पड़ी हो वहाँ। फिर भी उसको समझाते हैं कि देखो! इन सब का तू एक मालिक है।

ऐसे भगवान आत्मा को, एकरूप वस्तु है उसको अज्ञानी समझते नहीं, उसको समझाने के लिये कहते हैं कि देखो, यह जानता है वह आत्मा, यह जानता है वह आत्मा। विश्वास किसके अधिकार में है? विश्वास भले ही जूठा हो। विश्वास करता तो है न? पाँच हज़ार का माल लेने जाये, गहना लेने जाये। गहना क्या ऐसे ही लेते होंगे? गहना यहाँ रखो और पाँच हजार यहाँ रखो, ऐसा करते होंगे? वहाँ पहले गहना देते हैं, अथवा वह रूपया पहले देता है। नहीं, ऐसा रखो बराबर। ऐसा नहीं यहाँ गहना रखो और यहाँ पैसे लो, ऐसा होता होगा? इतना तो अज्ञानी को भी पर में विश्वास का भाग वर्तता है। समझ में आया? क्या होगा मलूकचन्दभाई! ये नरभेरामभाई को मालूम नहीं होगा, गाड़ी बेचते होंगे पच्चीस-पच्चीस हज़ार की। लो यह गाड़ी आप को देता हूँ, लाओ पच्चीस हज़ार मेरे हाथ में। ऐसा होता होगा? या तो पहले वह पच्चीस हज़ार पहले दे अथवा तो पहले उसको गाड़ी दे। दोनोंमें से एक को इतना तो विश्वास है कि नही? वह विश्वास नामका उसमें गुण है तो वर्तमान में ऊल्टे में वर्त रहा है। समझ में आया?

विश्वास तो है। कहा था न एक बार? एक व्यक्ति था उसने कहा, प्रश्न करो महाराज को, प्रश्न करो। दूसरा व्यक्ति थोड़ा अभिमानी था। क्या आप हमको शंकाशील समझते हो? और आप निःसन्देह हो? ऐसा कहा। सत्ताप्रिय मनुष्य। इसलिये (कहने लगा), आप निःशंक हो? निःशंक कभी हो नहीं सकते। निःशंक कभी नहीं हो सकते। ठीक। एकदूसरे में परस्पर बात चलती थी।

मैंने कहा, मेरी एक बात सुनो। आप निःशंक हो उसकी एक बात मैं करुं। नई शादी हुई। किसी ओर की बेटी थी, कभी मिले भी नहीं थे। पहली रात में शंका हुई थी कि यह मुझे मार डालेगी? अनजान स्त्री, किसीके घर पर जन्मी, कहाँ आयी? पहले ते ऐसा था। ये तो अभी सब होता है। एकदूसरे साथ में घूमने जाये, फलाना हो, ढिकना हो। पहले तो कहाँ कुछ था, उसके माता-पिता देख ले, बाकी सब कुछ मान्य था। चहेरा भी नहीं देखा हो कि कौन है। समझ में आया? यह (संवत) १९८७ की बात है, ८७ की। क्या आप को शंका हुई थी? वह १६ साल की और आप २० साल के। दोनों अनजाने। शंका हुई थी कि यह मुझे मार डालेगी? कितने ही

राजा की रानियाँ तो राजा को मार डालती थी, ज़हर देती है। ऐसी शंका हुई थी आप को? क्यों नहीं हुई? आप को भरोसा था कि यह स्त्री मेरी खास है और मेरे विषय का खिलोना है, मुझे मारेगी नहीं। ऐसी निःशंकता तुम को ज़हर में वर्तती है और आत्मा के भान में निःशंकता न वर्ते यह बात कहाँ से लाये? समझ में आया? बाहर में ऐसी निःशंकता। जिसके सामने कभी देखा नहीं था, कुछ मालूम नहीं है, क्या पता ज़हर दे देगी, क्या करेगी, फलाना करेगी। यह कैसी होगी? फलानी होगी? ऐसा हुआ था? आप को जिसमें राग है उसमें आप का विश्वास उठ नहीं गया था, विश्वास था। बराबर है कि नहीं?

ऐसे भगवान आत्मा, जिस तरह वस्तु की प्रीति और रुचि है ऐसा भान हो, उसको शंका रहे कि कैसी होगी? क्या होगा? अरे..! चल... चल..। ऊलटे भाव में भी जगत जहाँ निःशंक वर्तता है, वह सूलटे भाव में तो सुल्टा वीर्य अनन्तगुना पड़ा है। उसमें तो ऊल्टा पड़ा हुआ (वीर्य) ऐसी निःशंकता में वेदता है। समझ में आया? ऊलटे वीर्य में तो वीर्य घट जाता है, फिर भी निःशंक होकर वर्तता है।

भगवान चैतन्यस्वरूप जहाँ राग और पुण्य बिना की चीज़, निःशंक तो उसका मूल स्वरूप है। कहा नहीं? दोपहर में क्या चलता है? निःशंक तो उसका चिह्न और गुण है, लक्षण है, उसका आचार है। आनन्द और शुद्ध मैं हूँ। ज्ञानमूर्ति मैं हूँ। बाकी तीन काल तीन लोक में मेरी कोई चीज़ नहीं है। लाख प्रवृत्ति में खड़ा हो या क्रोड़ प्रवृत्ति में दिखता हो, फिर भी उसको अन्दर से स्वभाव की निःशंकता हटती नहीं। समझ में आया? बाद में वह हँसने लगा। वकील था। वकील हँसने लगा। आप ऐसे? भाईआ हम वकील नहीं है, लेकिन हम न्याय से तो आप को कुछ कह सकते हैं कि नहीं? महाराज भी वकील के जैसे कायदे निकालते हैं। हम जैसों की बोलती बन्द कर देते हैं। आप लाओ, ना कहो। आप का जगत का अनुभव है कि नहीं? बात तो सच्ची है, निःशंकता है कि नहीं यह भी सोचा किसने है? उस वक्त शंका थी या निःशंक थे, यह भी किसने सोचा था। आप बात करते हो तब ख्याल में आता है। बात तो सच है कि हमें ऐसी शंका होती नहीं। ऐसे धर्मात्मा और धर्म के जिज्ञासु भी जिस बात में निःशंक हुए हों, उसमें उसको शंका पड़े ऐसी तीन कालमें होती नहीं। समझ में आया?

यहाँ आचार्य कहते हैं कि अरे..! मुनिराज धर्मात्मा संत निर्ग्रंथ मुनि से बात चलती है न? उपदेशक का पद तो मूल में केवली का है और उसके बाद तो उपदेशक

का मूल पद तो निर्ग्रंथ वीतरागी संतो का है। समझ में आया? उसके बाद गौण पद चौथे और पाँचवे गुणस्थान के लिये है। यह तो निर्ग्रंथ मुनि.. आहाहा..! वीतरागता में तरबतर, वीतरागभाव में तरबतर वीतराग के अमृत के स्वाद लेने में क्षण में विकल्प, क्षण में आनन्द, क्षण में विकल्प और क्षण में मात्र आनन्द, ऐसी दशा में मुनिराज जगत के अज्ञानी प्राणी को सीधा समझने आया उसको बिचारे को आत्मा क्या? कुछ समझता नहीं, उसको समझाने कि लिये (कहते हैं)।

'**असत्यार्थ जो व्यवहारनय...**' देखो! वहाँ भी असत्यार्थ कहा है। '**व्यवहारोऽभूदत्थो**' ११ वीं गाथा में। यहाँ भी अभूतार्थ कहा है। वहाँ अभूतार्थ आश्रय लेने के लिये नहीं है इसलिये कहा है। यहाँ व्यवहार अभूतार्थ समझाने को कहा है। समझ में आया? ग्यारहवीं में कहा कि व्यवहार अभूतार्थ है। भगवान द्रव्यस्वभाव त्रिकाल सो भूत नाम सत्य नाम सत्य परमेश्वर, सत्य परमेश्वर स्वयं है। उसका आश्रय कर तो धर्म हो, सम्यग्दर्शन हो, अनुभव हो, चारित्र हो। '**व्यवहारोऽभूदत्थो**' एक समयकी पर्याय राग, निमित्त सब असत्य है। असत्य अर्थात् अविद्यामान है। अविद्यमान अर्थात् है नहीं। किसमें? इसमें नहीं है। उसमें भले हो लेकिन इसमें नहीं और अभेद में भेद दिखते नहीं, इसलिये उसको असत्यार्थ कहकर निषेध कराया है। आश्रय करनेलायक नहीं है।

यहाँ तो भगवान आत्मा जिस स्वरूप है उसे उस तरह समझता नहीं, उसे समझाते हैं कि देख भाई! यह मनुष्य वह जीव है, हौं! यह विचार कौन करता है? विश्वास किसको आता है? तुझे विश्वास कोई चीज़ में है? हाँ, मेरे पुत्र पर बहुत विश्वास है, मेरी पत्नी पर बहुत विश्वास है। वह विश्वास किसकी पर्याय है? क्या है वह? यह विश्वास जड़ में होता है? जड़ को होता है? जड़ का विश्वास हो सकता है कि यह जड़ है ऐसा विश्वास होता है आत्मा को। लेकिन जड़ में विश्वास नहीं होता। विश्वास की शक्ति और विश्वास का कार्य जड़ में हो सकता नहीं। उसको विश्वास है, ओहो..! जगत के पदार्थ यह पत्नी है, पुत्र है, बहुत अच्छे हैं, मेरे पुत्र इतने अच्छे, पत्नी अच्छी। सब के घर है लेकिन मेरा घर कोई दूसरी तरह का है। ऐसा विश्वास है कि नहीं तुझे? हाँ। यह विश्वास बाहर का है, वह विश्वास कहाँ रहता है? अन्दर में। उस विश्वास को धरनेवाला आत्मा है। उस विश्वास को धरनेवाला वह आत्मा है। ऐसा उसको समझाने के लिये अज्ञानी को निश्चय समझाने को यह व्यवहार भेद करके समझाता है। नेमिचन्दभाई!

'**मुनिराज अज्ञानी को समझाने के लिये असत्यार्थ जो व्यवहारनय उसका उपदेश देते हैं।**'

यह असत्यार्थ है हाँ! मनुष्य आदि के तीन बोल कहे न? मनुष्य जीव, नारकी जीव निश्चय से तो असत्यार्थ है। ऐसे राग, व्रत के नियम का भेद करके मोक्षमार्ग समझाया वह भी निश्चय से असत्यार्थ है। समझ में आया? वह सत्य वस्तु नहीं है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, गुण, पर्याय भेद से समझाया। वहाँ भेद नहीं है। वह तो एकरूप वस्तु, पूरी इँट है। चैतन्य इँट है एकरूप। लेकिन इँट को कैसे बतानी? देखो! ऐसी पीली है वह, ऐसे आकारवाली वह, गोल आकारवाली वह, अलग छापवाली वह है। कोई छाप भी होगी कि नहीं इँट में? छाप होती है अन्दर। एक रुपये की इँट आती है, एक रुपये की आती है, पाँच रुपये की आती है, दस रुपये की आती है। आती है कि नहीं? यहाँ एक-एक रुपये की इँट आती है न, पैर में रखते हैं तब देखते हैं कि यह इँट लगती है। कहो, समझ में आया? इँट की पहचान करानी हो तो फलाने की छाप है, ऐसी पीली है, ऐसी है ऐसा कहकर पहिचान कराते हैं। वहाँ तो है सो है। एकसाथ है। ऐसे भगवान चैतन्य-इँट को समझाने के लिये ज्ञानियों ने भेद कर के उसको समझाया, मुनिराजने।

परन्तु '**जो केवल व्यवहार को ही जानता है,...**' देखो अब। जो केवल व्यवहार को जाने। लेकिन उसको समझाने के लिये कहा। वहाँ से हटाकर परमार्थ समझाने के लिये था। उसके बदले केवल व्यवहार को जाने। बस! मनुष्य वह जीव, नारकी जीव, ज्ञान एक गुणरूप पूरा जीव, ऐसे भेद को ही पूरा स्वरूप मान लिया। व्यवहार को जाने अथवा राग-विकल्प आये, देखो! बराबर देव-गुरु-शास्त्र की सच्ची भक्ति आये पहली। उसके बिना आत्मा का भान होता नहीं। इसलिये विश्वास करो। सच्चे देव-गुरु को पहिचान। तो वह मान ले कि वही कोई सत्य वस्तु लगती है। यही सत्य वस्तु है। लेकिन वह तो मान्यता का राग पहले आता है, उसको ही तु मान ले, अज्ञानी व्यवहार को ही मान बैठे हैं। '**केवल व्यवहारही को जानता है,...**' देखो! ऐसी गाथा कैसी टोडरमलने ढूँढकर रखी है। वह बात नहीं रखी। '**व्यवहारोऽभूदत्थो**' रखी। भाई! लेकिन बारहवीं नहीं रखी। उसको यहाँ व्यवहार सिर्फ समझाने के लिये है, इतना ही उसको कहना है।

'**केवल व्यवहारही को जानता है,..**' केवल निमित्त को ही पहिचानता है, केवल दया, दान के राग को पहिचानता है, गुणी वस्तु अभेद है उसके केवल गुणभेद को जानकर बैठ गया है, '**उसे उपदेश ही देना योग्य नहीं है।**' आहाहा..! उसको तो उपदेश ही देना योग्य नहीं है। लायक नहीं है। हम व्यवहार से समझाना चाहते

हैं, उसकी जगह तुम व्यवहार को ही सत्य स्वरूप मान बैठा है। तेरे में समझने की लायकात ही नहीं है। सुनने की लायकात नहीं है ऐसा कहते है। आहाहा..! श्रोता कैसे होते हैं यह बताते है। सेठ!

अरे..! भगवान! परमेश्वरपद तेरा, यह तुझे समझ में नहीं आया हो, इसलिये भेद करके समझाते हैं। विकल्प आये, आये बिना रहता नहीं। आवश्यक है, आवश्यक है कि नहीं? उस पर जोर देता है। यहाँ तो अनेक अनुभव हुए हैं न, अनेक लोग अनेक प्रकार की बातें हुई है। एक कहता था, विकल्प आवश्यक है कि नहीं? विकल्प आवश्यक है। बापु! आता है भाई! क्या तुझे जोर देना है? कितना देना है? वह आता है वह अन्दर समझने के लिये, जाने के लिये फिसलने का कदम है। समझ में आया? वहाँ से हटकर यहाँ आये तो। वरना यहाँ से हटकर, वहीं के वहीं पड़ा रहे तो चौरासी के अवतार में जाता है। समझ में आया? कहो, भीखाभाई! सत्य है? देखो! '**जो केवल व्यवहार को जानता है...**'

श्रोता :- उसमें तो ऐसी बात लिखते हैं कि दृढ़ होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- नहीं, नहीं। केवल व्यवहार को जानता है कि वह समझाने की बात से मुझे विकल्प आया, यह समझाते हैं इसलिये समझ जाऊँगा। कहो, समझ में आया? वस्तु तो ऐसी निरालम्ब चीज है। आता है कि नहीं अपने? समवसरण में नहीं आता है? लिखा है न पंडितजीने। 'जेवुं निरालंब आत्मद्रव्य, एवो निरालंब जिनदेह' भगवान समवसरण में निरालम्ब शरीरसहित निरालम्ब (विराजते हैं), हाँ। निरालंबन सब परमाणु और सब आत्माएँ। किसी को किसी का आधार नहीं है। लेकिन वह समीपता दूर हो गयी, सिंहासन से समीपता ऐसे दूर हो गयी, निरालंब भगवान समवसरण में विराजते हैं। निराधार, हाँ! सिहांसन को उनका शरीर स्पर्शता नहीं है। गंधकूटी से निरालंब ऊपर शरीर होता है। देह होने पर निराधार। 'जेवुं निरालंबी आत्मद्रव्य, तेवो निरालंबी जिनदेह' समवसरण की स्तुति में आता है। ऐसे निरालम्बी सब द्रव्य। लेकिन यह तो प्रगट हुई दशा को वर्णन करने में ऐसा कहा।

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा को विकल्प का आलम्बन समजाने के लिये आता है। समझ में आया? भगवान बिराजते हों मूर्ति। देखो भाई! ध्यान कर, तु लक्ष्य कर। केवलज्ञान की मूर्ति ऐसे थँभ गयी है, ऐसे यह भगवान हैं। हिलते नहीं, चलते नहीं। जैसे ज्ञाता-दृष्टा लोकालोक को जानने की पर्याय में घूँटता रहता है, परिणमन कर रहे हैं, ऐसे देख, ऐसे तु देख। वहीं बैठा रहे कि इससे प्राप्त होगा, इससे प्राप्त

होगा। समझ में आया? तब मात्र व्यवहार को समझनेवाले '**केवल व्यवहारको ही जानता है, उसे उपदेश ही देना योग्य नहीं है।**' ओहोहो..! आचार्य इतने निष्ठुर! कोई ऐसा कहता है। ये सब प्रश्न उठे हैं। जगत के लिये आचार्य इतने बेदरकार! जगत के जीव की कुछ करुणा नहीं? व्यवहार को माननेवाला उपदेश के लायक नहीं है। उस व्यवहार को छुड़ाकर, व्यवहार द्वारा निश्चय समझाना चाहते हैं, वहाँ तु व्यवहार को पकडकर बैठ गया कि, ए.. व्यवहार, व्यवहार बीच में आता है कि नहीं? कहते है कि नहीं? तु समझने के लायक ही नहीं है। निश्चय वस्तु क्या है, परमार्थ से भगवान का सत्य मार्ग क्या है वह समझने के लायक नहीं है। व्यवहार के उपदेश के लायक नहीं है। यहाँ तो ना कही है। '**उपदेश देना योग्य नहीं है।**' लो। '**उपदेश देना योग्य नहीं...**' आहाहा..!

जिस बात हटने के लिये है उस पर जोर देनेवाले, मात्र व्यवहार को ही माननेवाले, वस्तु पूर्ण अखण्ड प्रभु चैतन्य भिन्न निर्विकल्प आनन्दकन्द है, उसमें जाने के लिये विकल्प आये, आये बिना रहे नहीं, उसके द्वारा जा, समझ ऐसा कहने में आता है। स्वयं को भी उसके द्वारा प्रयोजन में आये बिना रहता नहीं। लेकिन उसको ही मान ले कि देखो! आया की नहीं? आया की नहीं? उसके बिना चले? उसके बिना चले? विकल्प बिना होता नहीं और विकल्प से होता नहीं। ऐसा कहकर उस पर ज़ोर दे। विकल्प बिना होता नहीं। सुन न! वह तो विकल्प वहाँ होता अवश्य है, लेकिन उसके बिना होता नही उसका अर्थ उसको छोड़कर वहाँ जा, इसलिये कहा कि वह आता है और उसके द्वारा होता है। बाकी तो होता है तो उसके बिना ही। मालचन्दजी! विकल्प द्वारा नहीं। आहाहा..! यहाँ तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, ब्रह्मचर्य पाला उससे धर्म हो गया, उससे धीरे-धीरे होगा। धूल में भी नहीं होगा। समझ में आया? मूसन के अन्दर मस्तक कूट जायेगा।

भगवान चैतन्य का तत्त्व जो अखण्ड है, उसको समझाने के लिए संतोने अज्ञानी को भेद कर के समझाया। उसकी जगह भेद को ही पूरी वस्तु मान ले, राग को ही पूरी चीज मान ले, निमित्त से ही होता है ऐसे पूरा सर्वस्व आरोपित में अनारोप मान ले, उसको तो उपदेश देना ही योग्य नहीं है। आहाहा..! अर्थात्? वह नहीं समझेगा।

कहा था न एक एक बार? मुनियों उपदेश देते हैं कि '**वचनगुप्ति एणंभत्तं जीवे किं जणी**' वचन को गुप्त रखने से क्या लाभ? कि एक तो बाहर से विकल्प हट जाते हैं, अन्तर में ध्यान करने तरफ उसका झुकाव ज्यादा हो, जहाँ ऐसा उपदेश चलता

हो, वहाँ वह कहे कि महाराज! आप वचनगुप्ति का लाभ बताते हो और आप तो बोलते हैं। यह तो पोथी में रखे हुए बैगन लगते हैं। पोथी के समझते हो कि सेठ? ब्राह्मण की बात नहीं आती? ब्राह्मण है, एक ब्राह्मण था। वह कहता था, बैगन नहीं खाना चाहिये। समझे न? बैगन से ऐसा होता है। कथा में बात आयी थी। बैगन नहीं खाना चाहिये। बैगन का टोपा होता है न? उसमें जंतु बहुत होते हैं। टोपा होता है न सफेद, काला उपर? समझ में आया? बैगन होते हैं न बैगन? बैगन। उसमें टोपा होता है। विचार में अटका था उसमें कोई दूसरा कारण था। समझ में आया? बैगन सम्बन्धी कारण था। उसमें जो टोपा है, उसमें जन्तु होते हैं। इसलिये वह कहे, नहीं खाने चाहिये। बैगन नहीं खाने चाहिये ऐसा कहते थे वह। सुबह जब उसकी स्त्री आयी गोराणी। शेर, सवा शेर बैगन लेकर आना। पन्डितजी कल ना कहते थे न? वह पोथीवाले बैगन। पोथी में लिखे हुए बैगन नहीं खाने चाहिये, यह बैगन खा सकते हैं। समझ में आया? कहो, समझ में आया?

'**केवल व्यवहारही को जानता है,...**' समझ में आया? '**उसे उपदेश ही देना योग्य नहीं है।**' आप कहते थे न? व्यवहार की आप ना नहीं कहते थे? वचनगुप्ति का कहा था। लेकिन सुन न बापू! यह पोथीवाले बैगन नहीं है। वह समझाने वक्त उसके स्वरूप के ऐसे समझाते हैं और ऐसा विकल्प आये। परन्तु अभिप्राय में ऐसा है कि वाणी भी बन्द हो जाये। अर्थात् वाणी बन्द नहीं करनी है। लेकिन उस तरफ का विकल्प घटकर स्वरूप में स्थिर हो जाये, उसको अन्तर ध्यान होने का साधन बने इसलिये वचनगुप्ति का यह फल, उसका स्वरूप समझाने के लिये कहा है। तब वह गले पड़े। ऐसे व्यवहार समझाने में आये तो वह गले पड़ता है कि देखो! व्यवहार आया कि नहीं? आया कि नहीं? दीपचन्दजी! समझ में आता है? व्यवहार आया की नहीं? भाई! आया। कितना ज़ोर तुझे देना है? समझ में आया?

'**केवल व्यवहारीको जानता है, उसे उपदेश ही देना योग्य नहीं है।**' कितनी अच्छी बात रखी है देखो! अमृतचन्द्रचार्य मुनि जंगल में बसते थे। आनन्दकन्द में चारित्र में झुलते। शान्ति के रस में स्वाद लेते थे। गन्ने को चुसने से जैसे रस आता है न? ऐसे भगवान आत्मा को एकाग्रता द्वारा चुसते हैं। आनन्द के स्वाद में लिखा, अरे..! जीवो! व्यवहार से हम आप को समझाते हैं और यदि आप व्यवहार को ग्रहण करोगे और व्यवहार केवल आप को सर्वस्व हो जायेगा तो हमारे उपदेश में जो वस्तु कहनी है वह छूट जायेगी। हमें, व्यवहार को व्यवहार की तरह नहीं समझाना

है, व्यवहार द्वारा निश्चय को समझाना है। उसकी जगह आप व्यवहार को समझकर बैठ जाओगे तो सम्यग्दर्शन नहीं होगा--धर्म नहीं होगा। और व्रत, तप तो तीन काल में सम्यग्दर्शन के बिना हो सकते नहीं। समझ में आया?

'**तथा जैसे कोई...**' दृष्टान्त देते हैं देखो आचार्य। '**जैसे कोई सच्चे सिंहको न जाने...**' सच्चा सिंह होता है न सिंह? उसको न जाने। '**उसे बिलाव ही सिंह है;...**' कोई पहिचान करवाता है न? उसकी माँ पहचान कराती हो। बिल्ली नीकली, बिंदी-बिंदी होती है न? रंगबिरंगी धारियाँ। देखो! अरे.. पुत्र! देख, ऐसा सिंह होता है। देखो यह सिंह है। ऐसा सिंह है ऐसा कहती है। ऐसी दो बड़े रोंटे मुंछ के होते हैं, उसके जैसा सिंह होता है। रंगबिरंगी धारियाँ। बड़ा जंगली बिलाव हो। देख, यह सिंह जैसा है, सिंह जैसा है। वह बिलाव को सिंह मान लेता है। लडके ने देखा न हो।

एक बार कहा था न? कुवाडिया में कुवाडिया। कुवाडवा है न? कुवाडवा। वहाँ स्कुल में ठहरे थे। एक मगरमच्छ.. मगरमच्छ क्या मच्छर। बच्चों को समझाने के लिये मास्तरजी ने मच्छर का चित्र बनाया था। हमने वहाँ देखा था, मच्छर मच्छर इतना बड़ा बनाया था। मच्छर के पैर, चहेरा। वह बच्चे को समझाते थे कि देखो! मच्छर ऐसा होता है। ऐसे में गाँव में एक हाथी आया। मास्तरजी! आपने उस दिन समझाया था न? ये रहा मच्छर। पैर लम्बे, ऐसा चहेरा। अरे...! बापु! तुझे तो मच्छर का छोटा स्वरूप समझ में नहीं आये, इसलिये लम्बे पैर बताकर, चहेरा चौड़ा बताकर उसके रोंटे छोटे छोटे होते हैं उसको बडा करके उसका रूप बताने को तुझे कहा था। समझ में आया? उसको तुने पकड़ लिया। हाथी के चार पैर, सूंढ, पूंछ ऐसी। आहाहा..! अरे..! बच्चे! वह मच्छर नहीं है। तब क्या है? यह तो हाथी है। तब मास्तरजी! आपने इतने बड़े पैर बनाये थे। वह तो तुझे छोटे का बडा रूप बनाकर उसके अवयव का ख्याल करने के लिये समझाया था। लेकिन तुमने पकड़ लिया कि उसके अवयव ऐसे हाथी के जैसे होंगे। नेमचन्दभाई!

ऐसे सिंह को जो जानता नहीं, उसको तो बिलाव। बिलाव समझते हो न? बिल्ली। बिल्ली इतनी होती है। '**बिलाव ही सिंह है;...**' बिल्ली को समझाने गये। ऐसे अज्ञानी को समझाने गये कि, देखो, राग की मन्दता ज्ञान, दर्शन, चारित्र ऐसे भेद करके आप को समझाते हैं कि यह आत्मा। वहाँ जैसे बिल्ली सिंह हो गयी, ऐसे अज्ञानी को व्यवहार ही सच्चा हो गया। वह व्यवहार में अटक गया और परमार्थ में गया नहीं।

समझ में आया?

कहाँ कौन ऐसी झंझट करे? अपने तो करने लगो मुठ्ठी बाँधकर। हो गया धर्म। परन्तु धर्म कहाँ करें? किस चीज में करना? वह चीज कहाँ है? कैसी है? और किस तरह समझ में आये उसकी खबर बिना कहाँ स्थिर होगा और कहाँ प्रवेश करेगा? समझ में आया? कहाँ गुम होगा? गुम होने की चीज अन्दर दूसरी है। उसकी खबर नहीं और मात्र व्यवहार विकल्प को बाहर ढूँढता रहे, वहाँ कुछ हाथ नहीं लगेगा।

'**जैसे कोई सच्चे सिंह को न जाने उसे बिलाव ही सिंह है; उसी प्रकार जो निश्चयको नहीं जाने...**' ज्ञानानन्द मूर्ति अभेद अखण्डानन्द स्वरूप है उसको तो जानता नहीं। '**उसके व्यवहार ही निश्चयपने को प्राप्त होता है।**' व्यवहार से होगा.. व्यवहार से होगा... व्यवहार कारण है, निश्चय कार्य है। ऐसा कहकर सच्चा कारण मानकर व्यवहार भी एक सच्चा कारण है। जैसे निश्चय सच्चा कारण है, वैसे व्यवहार भी सच्चा कारण है ऐसा मान बैठे तो वह निर्विचारी पुरुष है। उसको धर्म का भान नहीं है। '**व्यवहार ही निश्चयपने को प्राप्त होता है।**' समझ में आया?

अबकी बार महोत्सव में यह अधिकार आया। व्यवहार-निश्चय का अधिकार बहुत अच्छा था। समझ में आया? वस्तुस्थिति सर्वज्ञ प्रभु जैन परमेश्वर परम ईश्वरता जिसको पूर्ण प्रगट हुई ऐसे जैन परमेश्वर, वाणी में व्यवहार द्वारा निश्चय को समझाये ऐसा उनकी दिव्यध्वनि में भी आये। समझ में आया? आता है एक साथ, परन्तु समझनेवाले की योग्यता के अनुसार समझ में आये ऐसा उसमें सब आता है, चारों अनुयोग आते हैं उसमें। उसमें समझनेवाले को ऐसा हो जाय कि देखो! भगवान कहते हैं कि दिव्यध्वनि से धर्म समझ में आता है। देशनालब्धि प्राप्त करे उसको समझ में आये। वह समझे। देशना सच्चे ज्ञानी के पास से मिलनी चाहिये। वह मिले तो उसको आत्मा का ज्ञान होता है। वहाँ समझ ले कि देशना मिली इसलिये ज्ञान हुआ। समझ में आया? ऐसा मान बैठे तो उसको व्यवहार ही निश्चय हो गया। बिलाव ही सिंह हो गया। सच्चा सिंह तो एक ओर रह गया। इस प्रकार व्यवहार ही निश्चयपने को प्राप्त हुआ। समझ में आया इसमें कुछ? अभी तो इसकी बड़ी गड़बड़ी चली है। शास्त्र के नाम पर, व्रत, क्रिया के नाम पर ऐसे ऊलटे अर्थ और ऊलटी कथनपद्धति चली है कि सत्य तो एक ओर रह गया।

यहाँ आचार्य कहते हैं... देखोआ यह बात ९०० वर्ष पहले अमृतचन्द्राचार्य महाराज पुरुषार्थसिद्धियुपाय (में कहते हैं)। अर्थात् पुरुष ऐसा आत्मा, उसकी सिद्धि का उपाय।

उसको बताने के लिये यह लिया कि व्यवहार से अन्दर जाये तो, उस व्यवहार भेद से समझाया इसलिये समझा ऐसा कहने में आता है। यह पुरुषार्थसिद्धि अर्थात् आत्मा की सिद्धि का उपाय है। परन्तु व्यवहार को ही सच्चा मान ले तो पुरुषार्थसिद्धि उपाय उसको हाथ नहीं आता। समझ में आया?

एक ओर ऐसी बात आये कि आत्मा धर्म समझे, सम्यक् को प्राप्त करे तब वहाँ दर्शनमोह का उदय स्वयमेव मिटता है, स्वयमेव मिटता है। स्वयमेव मिटे तो यहाँ ज्ञान कर्म होता है। वह वज़न क्या देता है? वहाँ कर्म स्वयमेव मिटे तब यहाँ ज्ञान होता है। परन्तु यहाँ कहते है कि यहाँ होता है तो वहाँ स्वयमेव मिट ही जाता है। ऐसे समझाना चाहते हैं तो वह यहाँ से लेकर बैठ जाता है। बड़े वांचनकार हों! सैंकडो साल से। सेंकडो अर्थात् बहुत साल से। समझ में आया? पढ़-पढ़कर निकाले कि देखो, इसमें कहा है। कर्म उपशम हो तो धर्म प्राप्त करे। कर्म में कुछ उघाड़ हो है तो ज्ञान का उघाड़ होता है। अरे..! ऐसा ऊलटा रहने दे। वह तो निमित्त से समझाया था। वहाँ ऐसे ले कि उसमें कुछ होता है तो मुझ में हो। परन्तु तुझ में उघाड हो तो वहाँ वह हुए बिना रहता नहीं। आहाहा..!

उसकी प्रभुता सम्यग्दर्शन में किस तरह है, उसको समझाने के लिये भेद कर के कथन किये हैं। यहाँ तो यह कहा। व्रत, नियम, दया और दान को व्यवहार से समझ में आयेगा, उससे समझाया है ऐसा भी यहाँ नहीं है। वह तो है भी नहीं कि नहीं, तेरे दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हुए, इसलिये धीरे-धीरे उसके द्वारा समकित होगा। ऐसा तो है ही नहीं। यह तो अन्दर वस्तु की समझन की एकता होने पूर्व, समझने की एकता होने पूर्व, समझने के भेद के विकल्पो द्वारा उसको समझाते हैं। बहुत गहरी बातें। धीरुभाई!

एक बार सत्य क्या है उसके लक्ष्य में, निर्णय में, वीर्य में, श्रद्धाशक्ति में, ज्ञानशक्ति में, वीर्यशक्ति में यथार्थता न आये तो यथार्थ वस्तु की प्राप्ति तरफ जायेगा कैसे? समझ में आया? अभी यथार्थ शक्ति क्या है उसका कार्य कितना है, श्रद्धा का, ज्ञान का, वीर्य का, कुछ मालूम नहीं और हम समकिती है और ये व्रत, तप किये, वह तो समकित हो तो ही व्रत, तप होते हैं न? मालचन्दजी! व्रत, तप किसको होते हैं? समकित के बाद। हमें व्रत और तप तो है, इसलिये समकित तो आ गया, नीचे ही होता है। नीचे होता है अर्थात् नहीं होता। तुझे भान कब था? सम्यक् हुआ माने उसका भान हो गया, परमेश्वर होने की तैयारी हो गयी। परमेश्वर की भनक लगी,

भव की भनक गयी। समझ में आया? ऐसे तत्त्व के भान के लिए व्यवहार समझाने के लिये आता है। उसको ऐसा कहे, बापु! समझो, थोडा परिचय करो।

श्रीमद् एकबार बैठे थे। शरीर बराबर ठीक नहीं था। बैदने कहा था कि दूसरे के साथ बहुत बोलना नहीं। अकेले बैठे थे, उसमें एक आदमी आकर बैठा। आप व्यवहार का उथापते हो? सीधा प्रश्न किया आकर। महावीर ने कहे हुए व्यवहार को आप उथापते हो? भाई! महावीर ने कहे हुए व्यवहार को हम उथापते नहीं। थोड़ा परिचय करो तो समझ में आयेगा। इतना बोले। लालचंदभाई! आप व्यवहार का उथापन करते हो? वह शायद यही थे, बारोट आते हैं, बारोट मर गये न वहाँ? भगवानभाई बात करते थे, वडवा में वृद्ध थे न? गीरधर। बहुभाग वही थे, बहुभाग वही थे। वहाँ गये थे। वह कठोर-कठोर क्या? उस गाँव में गये थे। वहाँ गये थे।

इसलिये उन्होने पूछा। वह तो चल बसे न? चल बसे। पहले तो भडककर गये थे न? ये तो व्यवहार उथापते हैं, व्यवहार उथापते हैं, व्यवहार उथापते हैं। आप व्यवहार को उथापते हो? कहा कि भाई! भगवान महावीर द्वारा कहे हुए व्यवहार को हम उथापते नहीं है। जैसा है वैसा हम कहते हैं। लेकिन आप थोड़ा परिचय करो तो समझ में आये। लो, दूसरा क्या कहे उसको? वह सब व्यवहार-वाक्य हुए। परिचय करो तो समझ में आये। लेकिन ऐसा कथन आये बिना रहे नहीं। लेकिन उसको ही मान ले कि देखो! निश्चित ही हमें उनके परिचय से प्राप्त होगा ऐसा वह कहना चाहते हैं और अन्य के परिचय से प्राप्त नहीं होगा ऐसा कहना चाहते हैं। भाई! व्यवहार के कथन की पद्धति तो ऐसी ही आये, लेकिन उसको ही निश्चय माने तो व्यवहार ही, बिलाव जैसे सिंह हो गया, ऐसे उसको व्यवहार निश्चयपने को प्राप्त होगा।

'**यहाँ कोई निर्विचारी पुरुष ऐसा कहे कि...**' निर्विचार मनुष्य समझे बिना इस तत्त्व की बात को पकड़े बिना एकदम (कहे कि), आप व्रत, तप, नियम को आप व्यवहार कहते हैं इसलिये हम छोड देंगे। उसको तो आप हेय कहते हो। समझ में आया? उसको हम छोड देंगे। आप तो उसमें कुछ लाभ कहते नहीं। अरे..! सुन न, उसमें लाभ कौन कहता है? परन्तु हम किस अपेक्षा से कहते हैं उसको तुम समझते नहीं। उसका अब प्रश्न करेंगे और उत्तर देंगे। विशेष कहेंगे...

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)